International Journal of Applied Research 2016; 2(7): 620-622

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(7): 620-622
www.allresearchjournal.com
Received: 17-05-2016
Accepted: 19-06-2016

कांता रानी
गांव बप्प जिला सिरसा हरियाणा।

Correspondence
कांता रानी
गांव बप्प जिला सिरसा हरियाणा।

हिंदी दलित उपन्यासों में स्वतंत्र अस्तित्व की प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष

कांता रानी

प्रस्तावना

वास्तव में वर्णव्यवस्था समाज की व्यवस्था बनाए रखने के लिए स्थापित की गई थी। जिससे समाज का हर वर्ग उसके लिए निर्धारित किए गए काम करके समाज में शांति बनाये रखे और उसके विकास में अपना योगदान दे। लेकिन ब्राह्मणों तथा अन्य उच्च्वर्णियों ने समाज पर अपना प्रभुत्व बनाये रखने के लिए शूद्रों को हर तरह से समाज के सबसे निचले स्तर पर पहुँचा दिया। मनुष्य की दूसरों पर हावी होने की, हुकूमत करने की प्रवृत्ति के कारण इन सवर्णों ने दलितों पर अत्याचार करने शुरु कर दिए। उनसे हर तरह के अधिकार छीन लिये। पूजा, शिक्षा और समाज से जुड़े हर मुद्दे से उन्हें वंचित रख दिया। इस तरह वे आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक हर क्षेत्र से बाहर खदेड़ दिए गए।

हजारों वर्ष की प्रताड़ना, शोषण, द्वेष, वैमनस्य और भेदभाव से दबा 'दलित' व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्तर पर अकेला हो चुका था। ऐसे में हमारे देश के ज्योतिबा फुले और अन्य समाज–सुधारकों ने दलितों के उद्धार हेतु काफी संघर्ष किया और यही संघर्ष बाबासाहेब अम्बेदकर ने शिखर पर पहुँचा दिया। इसी प्रक्रिया के दौरान ही दलितों में अस्मिता जगने लगी और इसी कारण अपने अस्तित्व को अर्थ कैसे दिया जाए, 'मैं कौन हूँ ? 'मेरी पहचान क्या है ?' यह प्रश्न उनके मन में उठने लगे। अपने अस्तित्व और अस्मिता को स्थापित करने के लिए वह छटपटाने लगा है। आजादी के बाद भी उसकी यह छटपटाहट बरकरार है। अब वह अपने आपको अपनी जाति और व्यवसाय के माध्यम से ही नहीं जानता बल्कि अपनी एक स्वतंत्र पहचान बनाना चाहता है। इस अहसास ने उनमें एक वैचारिक–क्रांति ला दी है। 'परिशिष्ट' उपन्यास में बावनराम हमारे सामने ऐसे ही क्रांतिकारी विचार लेकर आते हैं। वह उन लोगों में नहीं है जो यह मानते आए हैं कि बाप का पुश्तैनी काम बेटे को करना ही होगा, वह खुद भी पारंपरिक धंधा छोड़कर फैक्ट्री में नौकरी करता है, उसकी इच्छा है कि उसका बेटा पढ़–लिखकर कुछ बनकर दिखाए ताकि समाज यह सीख ले कि ये सिर्फ मरे हुए ढोरो की खिदमत के लिए ही नहीं जन्मे हैं। बावनराम अपने बेटे से कहता है – ''मैं चाहता हूँ कि तुम एक दिन अपनी कार से आकर घर के सामने उतरो। ..... जिससे लोग यह तो देखें कि हम लोगों की सन्तान भी कारों और मोटरों में बैठकर चलने के लिए पैदा होती है। हम छोटे हैं, क्योंकि हम हिम्मत हारकर, यह मान लेते हैं कि हम छोटे हैं और छोटे ही रहेंगे। अपने जमाने में मैंने गाँव का पुश्तैनी काम त्यागकर फैक्ट्री की नौकरी यही बताने के लिए की थी कि हम लोग गाँव के मरे हुए ढोरों की खिदमत के लिए ही नहीं बने, हम फैक्ट्रियों में भी काम कर सकते हैं।'' [1] इस तरह वह अपने अस्तित्व को स्थापित करते हुए समाज की भोगवादी संस्कृति से जुड़ना चाहता है।

अपनी सलीबें' के इशू में भी एक अलग चेतना पनप रही है। वह अपने स्वयं के कर्मों का जिम्मेदार है अपने जन्म का कतई नहीं। – ''उसने अपने हर कदम के लिए चट्टान तोड़ी थी। सिर्फ इसलिए कि ऐसे माँ–बाप से जन्मा था जिन्हें छू भर लेने से लोग इंसान नहीं रह पाते। ऐसे माँ–बाप उसे इस दुनियाँ में लाए थे जिनके हिस्से में समाज अपनी जूठन और तलछट ही फेंकता है। ईशू सिर्फ अपने खुद के किए का जिम्मेदार था। अपने जन्म का कतई नहीं जिस बात का जिम्मेदार वह खुद नहीं उसके लिए उसकी जवाबदेही कैसी.....'' [2]

आजादी के बाद दलितों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना जागृत हुई है, गाली देने पर उनकी आँखों में लाली दौड़ने लगती थी। ताबेदारी करते–करते उनमें भी ताव आने लगा था। हम भी इन्सान हैं अपनी इस पहचान से वह वाकिफ हो गए थे। 'मुक्तिपर्व' उपन्यास के नवाबसाहब जब बंसी से उसके बेटे को हवेली पर काम करने के लिए कहते है तो एक पल की भी देरी न करते हुए तुरंत जवाब देता है – ''नवाब साहब, न अब मैं किसी की गुलामी करूँगा और न मेरा बच्चा।

मुझे गुलाम बने रहने की आदत नहीं नवाब साहब। वैसे भी देश अब आजाद हो गया है। अब न कोई किसी का गुलाम है और न कोई किसी का मालिक। सब बराबर हैं।'' [3] ''वे अब मिट्टी का ढेला नहीं रहे थे कि कहीं से उठाकर उन्हें कहीं भी फेंक दिया जाए।'' [4]

अब वे भी अपने आपको एक आजाद देश का आजाद नागरिक मानते हैं। बंसी विचारों की इसी उहापोह से गुजरता है और इस अलिखित गुलामी से आजाद होने के लिए उसकी मानसिक छटपटाहट भी उनकी आजादी पर प्रश्नचिन्ह लगाती है – ''लोगों को दुःख होता है हमारी आजादी से। पशु–पक्षियों की आजादी उन्हें भाती है। चिड़ियों को वे पिंजरे से मुक्त कर देते हैं, पर हमारी मुक्ति के सवाल पर वे चुप्पी साध लेते हैं। हम स्वयं कुछ कहें तो हमें आँखे दिखाते हैं, हम पर आगबबूला हो बरसते हैं। जैसे हम काठ के हों। हमारे भीतर संवेदनाएँ ही न हो। हमारे जिस्म में खून ही नहीं बहता हो। हम कोई मुर्दा हैं। अब हम गुलाम तो नहीं।'' [5] ''एक पिता होने के नाते बंसी बार–बार यही सोचता था कि आखिर उनके ही साथ यह सब क्यों होता है ? आजादी के बाद भी क्यों लोग जातियों की बात करते हैं। एक–दूसरे को छोटा–बड़ा समझते हैं। जात–पाँत, छुआछूत का आखिर अंत कब होगा!'' [6]

'परिशिष्ट' उपन्यास का बावनराम गांधी और अंबेडकर के उदाहरण देकर अपने बेटे अनुकूल में भी इसी अस्मिता की खोज की शक्ति के बीज बोने की कोशिश करता है– ''नहीं भैया, हिम्मत न हारो। अपने पुरखों को देखो। हजारों साल सन्तानहीन पितरों की तरह अपमान के कुएँ में उल्टे लटके रहे..... कोई आयेगा जो उद्धार करेगा, सम्मान दिलायेगा। गाँधी और अम्बेदकर बाबा आये..... लेकिन और लोगों को भी तो आगे आना है। वे तो आकर चले गये है।'' [7] तुम्हें अपने को, अपने लोगों को और उन सब लोगों को जो हमारे जैसी किस्मत लेकर पैदा हुए हैं..... राह दिखानी है।'' [8]

इस तरह देश के समाज सुधारक आंदोलन से उपजा दलितों का अस्तित्व संघर्ष लगातार अपनी अस्मिता की खोज में कार्यरत है और एक–न–एक दिन वह अपने इस लक्ष्य को पूरी तरह पाकर रहेगा।

दलित समाज को जब हिन्दू धर्म से सिवा घृणा, नफरत, अन्याय और हिंसा के कुछ हाथ न लगा तो वे अन्य धर्म की ओर आकृष्ट होने लगे – 'हजार घोड़ों का सवार' उन्यास की कमेड़ी और चेतू अपना धर्म छोड़कर क्रिस्तान बनते हैं क्योंकि उनके अनुसार – ''. ..... जो धर्म हमारी खुशी को मिटाता हो, हमारा खून पीता हो, हमें कुत्ते से बदतर जिंदगी जीने के लिए बाध्य करता हो, उस धर्म में रहने से क्या फायदा ?'' [9] अधिकतर लोग ईसाई धर्म की शरण में जाने लगे। पादरियों का मधुर व्यवहार और भाषा उन्हें उनके करीब लाता था – ''वे केवल हँसते थे, मुस्कुराते थे और बिना किसी हिचकिचाहट के हर जाति के आदमी से हाथ मिलाते थे। उससे कुछ माँगते नहीं थे बल्कि उसे देते थे। जीसस क्राइस्ट के छोटे–छोटे चित्र थे उनके पास। जिन्हें बाँटते हुए चलते थे वे।'' [10]

लेकिन वे नहीं जानते थे कि धर्म परिवर्तन करने के बाद भी वे शूद्र ही रहेंगे। हिन्दू धर्म की वर्ण–व्यवस्था से उत्पन्न जातिगत भेदभाव के दंश से पीड़ित शूद्र और अतिशूद्र जातियाँ, जाति व्यवस्था के जुल्मों से बचने के लिए धर्म–जाति बदलकर अभिजात होने का प्रयास करने लगी। हिन्दू हो, मुसलमान हो, सिक्ख हो या फिर ईसाई हो ऊँची जाति के लोग छोटी जाति के लोगों को कभी भी समानता का दर्जा नहीं देते हैं। 'मोरी की ईंट' उपन्यास में खैराती एक अंग्रेजी अफसर के खानसामा की हैसियत अर्जित कर चुके हैं। ईसाईयत के प्रभाव एवं सम्पर्क के कारण ईसाई धर्म स्वीकार कर चुके हैं परन्तु जाति के कीड़े अब भी बुलबुलाते ही है। जब उनके बड़े भाई पूछते हैं कि तुम ईसाई क्यों हो गये ? तो जवाब में खैराती कहता है – ''हमने सोचा था कि क्रिस्टान हो जायेंगे तो मेहतर की जात से तो जान छूट जायेगी। लेकिन ..... ।'' [11]

भले ही धर्म बदल लिया हो परन्तु जाति से पिंड नहीं छूटता है। इसी क्रम में आगे खैराती का बड़ा भाई समझाते हुए कहता है – ''तू बड़ा भोला है रे, खैराती! बसीठों में कहते हैं कि रांड से बढ़कर गाली और मेहतर से घटकर जात नहीं होती। धर्म की तोबा–पलटी से हमारी जाति पर कोई असर नहीं पड़ता। मुसलमान बना लिया तो लालबेगी कहने लगे, हलालखोर कहने लगे, अल्लन, बिल्लन, अहमदा, मोहमदा नाम रख दिये। सिक्ख बना लिया तो मजहबी कहने लगे, झंडा सिंह, गंडा सिंह, बंटा सिंह, बसन्ता सिंह नाम रख दिए। ईसाई बना लिया तो जान्सन, थाम्पसन, ऐडविन, ग्लैडविन नाम रख दिए। रहे मेहतर के मेहतर, नरक बटोरने का पट्टा हमारे नाम बदस्तूर कायम रहा।'' [12]

मंगिया भी विचारों के गर्त तक पहुँचने पर उसके सामने यह प्रश्न चिह्न है कि आखिर हम किस धर्म के हैं ? न हिन्दू हमें अपना पाता है न मुस्लिम हमें अपना पाता है ? ''मुसलमान हमें हिंदू कहते हैं तो हम भी अपने आप को हिन्दू मान लेते हैं। वैसे, कभी–कभी बड़ा अजीब–सा लगता है कि हम भी कैसे हिन्दू हैं जिन्हें छू–भर लेने से दूसरे हिन्दुओं को छूत लग जाती है। रामजी, कन्हैयाजी, शंकरजी भगवान तो सभी हिन्दुओं के हैं, लेकिन हम उनके मंदिरों में घुस भी नहीं सकते। अबकी दीवाली पर बाजार में तस्वीरें बिकने के लिए आई थी। हमारे मोहल्ले के हुरिया ने एक पैसा देकर कन्हैयाजी की एक पैसे वाली तस्वीर देने के लिए कहा। तस्वीर वाले ने हुरिया को ऊपर से नीचे तक देखकर उसका पैसा सड़क पर फैंक दिया। दस कहनी–अनकहनी सुनाकर बोला – कन्हैयाजी को रखने के लिए अब साले भंगियों के घर ही रह गये हैं!'' [13]

इस तरह धर्म परिवर्तन का सूर्य भी अछूतों को सही न्याय न दिला सका। ईसाइयत सिर्फ समाज में अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने का एक यत्न बनकर रह गई। 'मोरी की ईंट' उपन्यास के जैकब के इस कथन ने झूठ का पर्दा हटाकर रख दिया – ''हमारी ईसाइयत, विदेशियों की उतरन–फुतरन पहने अकड़कर चलने में ही सीमित है। ऊँची जातियों में जाते हैं तो बड़े गर्व के साथ अपनी ब्राह्मण, राजपूत, जाट, कायस्थ अथवा पठान ओरिजिन की बात करते हैं। शादी–विवाह करने बैठते हैं तो अपनी मूल जाति के ही वर और कन्या तलाशते हैं। अछूतों को हम सिर्फ ईसाइयों की संख्या बढ़ाकर दिखाने के लिए ही ईसाई मानते हैं।'' [14]

यह सभी जानते है कि एकता में शक्ति होती है और वह बड़ी–से–बड़ी चुनौती का सामना कर सकती है। 'वीरांगना' झलकारी बाई' उपन्यास में जब गाँव के सारे दलित संगठित होकर विद्रोह का स्वर अपनाते है तब मानों यह परिवर्तन चिरस्थायी हो जाता है – ''सरपंच की भैंस मर गई। कोई चमार उसे उठाने नहीं आया। दो दिन आसपास सडाँध रही और तनाव भी रहा। चमार जाति के लोग टस से मस नहीं हुए। मजबूर होकर रात में चोरी–छुपे दूसरे गाँव से तीन–चार लोगों को सरपंच ने बुलवाया। तब जाकर सड़ाँध दूर हुई। उस घटना से दलितों को अपनी ताकत का अहसास हुआ था। साथ ही उस गुलामी का भी, जिसे सदियों से वे सहते आए थे।'' [15]

'हजार घोड़ों का सवार' उपन्यास में गीधू, चमारों के सम्मेलन में सामंती व्यवस्था के प्रति विद्रोह के स्वर में घोषणा करता है कि– ''हम मरे हुए पशु नहीं उठाएँगे। हम ठाकुरों के विवाह जन्म–मरण पर बेगार नहीं करेंगे! हम उसके मेहमान आने पर कोई काम नहीं करेंगे। हम उन सभी व्यवस्थाओं का विरोध करेंगे जो सदियों से हरिजन व अन्य शोषित जनों का शोषण करती आई हैं।'' [16]

निष्कर्षः

कहा जा सकता है कि इस तरह दलितों में 'शिक्षा' ने अस्तित्व स्थापना में एक औजार का काम किया है। इसी कारण उनमें दलित–चेतना पैदा हुई है। शिक्षा के कारण ही वे चिन्तन–मनन करने लगे हैं। आजादी के पश्चात् दलितों में शिक्षा का प्रसार बढ़ा है। इसी कारण उपन्यासों के दलित पात्र अधिकतर चेतना संपन्न दिखाई देते हैं और यही चेतना उनमें विद्रोह करने के लिए प्रेरणा देती है।

संदर्भ सूचीः

1. गिरिराज किशोर 'परिशिष्ट' पृ0 13
2. नमिता सिंह 'अपनी सलीबें' पृ0 175
3. मोहनदास नैमिशराय 'मुक्तिपर्व' पृ0 37
4. मोहनदास नैमिशराय 'मुक्तिपर्व' पृ0 37
5. मोहनदास नैमिशराय 'मुक्तिपर्व' पृ0 64
6. मोहनदास नैमिशराय 'मुक्तिपर्व' पृ0 63
7. गिरिराज किशोर 'परिशिष्ट' पृ0 52
8. गिरिराज किशोर 'परिशिष्ट' पृ0 53
9. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' 'हजार घोड़ों का सवार' पृ0 161
10. मोहनदास नैमिशराय 'वीरांगना झलकारी बाई' पृ0 26
11. मदन दीक्षित 'मोरी की ईंट' पृ0 40
12. मदन दीक्षित 'मोरी की ईंट' पृ0 40
13. मदन दीक्षित 'मोरी की ईंट' पृ0 145
14. मदन दीक्षित 'मोरी की ईंट' पृ0 219
15. मोहनदास नैमिशराय 'वीरांगना झलकारी बाई' पृ0 53
16. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' 'हजार घोड़ों का सवार' पृ0 336–337